Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVIII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

बाल लोक साहित्य और बाल विमर्श

डॉ. अनिता बिरला*

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय आदर्श महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – बाल लोक साहित्य का सृजन बाल जीवन के जन्म के साथ ही माना जाता है। यह साहित्य बालकों के लिए मौखिक, कल्पनाशील साहित्य है जिसका परित्याग करना सम्भव नहीं क्योंकि यह साहित्य बाल मन के साथ स्वत: प्रवाहित होता है। दादा – दादी और नाना – नानी की कहानियों और लोरियों के रूप में प्राय: सभी बचपन में इनका आस्वाद करते है। प्रारंभिक बाल साहित्य जो मौखिक रूप में लोककथाओं और लोरियों के रूप में प्राप्त होता है, वह लोक साहित्य का ही अंग है। इन्साक्लोपीडिया ब्रिटानिया के अनुसार, 'लोक साहित्य मौखिक रूप में प्रचलित संस्कृति है, जिसका कोई लिखित रूप नहीं होता है और जो परिचित लोगों द्वारा किसी समय आकार लेता है, यह आधुनिक विकसित संस्कृति के साथ – साथ विद्यमान होकर बच्चों व अशिक्षितों द्वारा जीवित रहता है, लेकिन अब यह धीरे – धीरे किताबों, अखबारों, रेडियो व दूरदर्शन द्वारा भी जन – जन तक प्रेशित हो रहा है। इनमें गीत, नृत्य नाटिका, कहानियाँ, कहावत और मुहावरे मुख्य है।'[1] बालकों के भविष्य निर्माण में घर के वातावरण के साथ–साथ बाल साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। शिशु सर्वप्रथम बाल साहित्य श्रुति परम्परा के रूप में प्राप्त करता है, इस श्रृव्य बाल साहित्य में पशु – पक्षी, राजा – रानी, परी आदि का उल्लेख मिलता है, अपने चुम्बकीय आकर्षण के कारण बाल लोक साहित्य जीवन भर बालक के साथ चलता है, बाल लोककथाएँ बाल – जीवन की संजीवनी है। दादी और नानी से कहानी सुने बगैर भला कोई बचपन आगे बढ़ सकता है ? इन कहानियों को सुन–सुन कर बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है। बालकों के मस्तिष्क में सामाजिक व्यवहार तथा एक–दूसरें की सहायता करने का बीजांकुर सहज रूप में बाल लोक साहित्य के द्वारा हो जाता है।

बच्चों को संस्कारित करने, उनमें मानवता के भाव भरने के लिए बाल लोक साहित्य एक सशक्त माध्यम है। बाल लोक साहित्य वाचिक परम्परा के रूप में अनादिकाल से चला आ रहा है। स्वराज्य सूची का कथन है 'मानव समाज में आदिकाल से ही लोककथाएँ प्रचलित है और अपनी व्यापकता और सार्थकता के आधार पर ये लोक जीवन में इतनी गहरी पैठ गई है कि ये जनमानस का संस्कार बन चुकी है।'[2]

बालक जब दादी नानी की गोद में बैठकर कहानी सुनाने की जिद करता है तो बुर्जुग कहानी, गीत, लोरी, पहेली सुनाकर उनका मनोरंजन करते थे। इन कहानियों, लोरियों,गीतों व पहेलियों से बालक में प्रेम, दया, सहानुभूति, परोपकार, धैर्य, लगन, साहस, चातुर्य, कौतूहल जैसे गुणों का विकास हो जाता था तथा वे आत्मविश्वास से परिपूर्ण चरित्रवान नागरिक के रूप में परिणित हो जाता था। बाल लोक साहित्य में बालक को संस्कारित करने की अद्भूत क्षमता है। इस साहित्य द्वारा नौनिहालों को बड़ी आसानी से संस्कारित किया जा सकता है। हिन्दी बाल साहित्य को दो भाग में बाँटा गया है पहले भाग में डॉ. परशुराम शुक्ल एवं विभा शुक्ल ने लिखा है 'पहले के अन्तर्गत उस लोक साहित्य को रखा जा सकता है, जो जन सामान्य का साहित्य था। दादा – दादी, नाना – नानी अथवा परिवार के अन्य सदस्य, बच्चों को प्राय: रात में सोते समय मनोरंजन अथवा नैतिकता से युक्त कथाएँ सुनाते थे। इनमें पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की कहानियाँ भी होती थी। ये कहानियाँ अलिखित थी तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती थी।'[3] आज के बालक – बालिका घण्टों टी.वी. के पास बैठकर मनोरंजन करते है, लेकिन इन कार्यक्रमों में देश की संस्कृति, सभ्यता, जीवन व्यवहार, षिष्टाचार, नैतिक शिक्षा का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

आज जीवन की बढ़ती जटिलताओं का प्रभाव बच्चों पर स्पष्ट देखा जा सकता है। जीवन में टेलीविजन, मोबाईल एवं इंटरनेट का महत्व इतना बढ़ गया है कि मानव जीवन जैसे मशीन बन गया है, इस भागदौड़ में वर्तमान षिक्षा प्रणाली और सामाजिक व्यवस्था के कारण अभिभावकों की महत्वाकांक्षाओं के बीच बचपन खोता जा रहा है। सामाजिक जीवन की बढ़ती व्यस्तताओं से दादी – नानी का साथ नहीं मिल पा रहा है। फलस्वरूप दादी – नानी की कहानियों का संसार लुप्त होता जा रहा है, जब से बालक दादी – नानी के इस कथा संसार से वंचित हुआ है उसका मानसिक विकास थम सा गया है। मशीनी जीवनशैली ने बालक के मस्तिष्क को भी जंग सी लगा दी है, बालक की सहज व नैसर्गिक प्रतिभाएं खो सी गई है। मोबाईल, इन्टरनेट व कार्टून चैनलों ने बाल मन को विचित्र और डरावने साँचे में ढालने के प्रयास शुरू कर दिये है। आज समाज में बच्चों की जो स्थिति है, वह अत्यन्त विवादास्पद है। बदलते जीवन मूल्यों, समाज में फैला हुआ झूठ और भ्रष्टाचार, परम्पराओं का मोह और नई सदी की चुनौतियों के बीच फँसा बच्चा अपना भविष्य निर्धारित नहीं कर पा रहा है। परिवार उनकी पहली पाठशाला होती है, बच्चे भी वही सीखते है, जो वह अपने बड़ों को करते देखते है, लेकिन विडंबना यह है कि बड़े लोग ही आज समाज, राजनीति और परिवारों में दोहरी मानसिकता में जी रहे है। चाहे समाज के ठेकेदार हो, राजनेता हो, शिक्षक हो या अभिभावक सभी के दोहरे चेहरे होते है। बाहर से जिन आदर्शों की बात करते है, घर में वह नहीं होता। हाथी के दाँत खाने के और है, दिखाने के और। बच्चे तो वही सीखेंगे, जो अपने बड़ों को करते देखेंगे।

आज औद्योगीकरण, नगरीकरण और पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के

कारण संयुक्त परिवार का विघटन हुआ है और एकल परिवार बनने लगे। संयुक्त परिवार के टूटने और एकल परिवार के बनने के बीच बच्चे की स्वयं की पहचान गुम हो गयी। संयुक्त परिवार में दादा – दादी और नाना – नानी बच्चों को अनेक कहानियाँ सुनाते थे, जो बच्चों का मनोरंजन तो करती ही थी उन्हें सांस्कृतिक मूल्य देकर उनकी विवेक शक्ति को भी जागृत करती थी किन्तु एकल परिवार में आ जाने से संयुक्त परिवार में जो संस्कार और संरक्षण मिलता था बच्चे आज उस सांस्कृतिक विरासत से धीरे–धीरे दूर होते जा रहे है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे लिखते है, 'लोककथाओं में मनोरंजन भी होता था और समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों की मीमांसा भी। जब जैसी समस्याएं आई, उन्हीं के अनुकूल कथाएँ बनी। लोककथाओं के माध्यम से जीवन के अनुभव आने वाली पीढ़ियों को विरासत में देने की परम्परा का उद्देश्य यही था कि आने वाले समाज के प्रति वे पीढ़ियाँ सजग हो जाएँ। यह सजगता केवल समाज की समस्याओं के प्रति ही न थी, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायी बनाने की भी थी।'[4] मानसिक भूख जो दादा – दादी की कहानियाँ सरलता से शान्त कर देती थी, आज एकल परिवार में माता – पिता बच्चे को समय नहीं दे पाने के कारण उसकी मानसिक क्षुधा को शान्त करने में असमर्थ है। इसका परिणाम यह हुआ कि पिछले गत वर्षो में जो पीढ़ी तैयार हुई वह दिशाविहीन होकर संस्कारों से वंचित होती जा रही है। बालक जहाँ माता – पिता के ध्यान नहीं देने से उपेक्षित महसूस कर रहा है, वही माता – पिता के बीच होने वाले झगड़ों से स्वयं कुंठित व परेशान है, वही वह पाश्चात्य संस्कृति व मूल्यों के प्रति भी आकृष्ट हुआ है, सांस्कृतिक मूल्यों में हो रहे इस तरह के विघटन और उसके रंग में डूबनेवाले बच्चों के बारे में विद्धत जन, चिन्तक, राजनेता, षिक्षक व अभिभावक सभी आँख – कान बंद किए बैठे है। बच्चों की उपेक्षा के कारण जो सांस्कृतिक विस्फोट हो रहा है, उसके परिणाम बहुत भयावह होगें, इस कारण आज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श की तरह बाल विमर्श पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इस विषय पर गहनता से विचार विमर्श किया जाना चाहिए। यदि भारत की बात की जाय तो यहाँ 20 करोड़ बच्चे है, यही भावी भारत के कर्णधार है जो प्रगति की मशाल को हाथ में लेकर सुदृढ़ भारत के निर्माण में अपनी महती भूमिका निभायेंगे।

बाल लोक साहित्य बच्चों में जिज्ञासा व कल्पना को जन्म देता है, जो बच्चों को मानव जीवन के प्रति जागरूक व आस्थावान बनाता है। वर्तमान युग के भौतिकता प्रधान जीवन ने बच्चों को निष्क्रिय सा बना दिया है, आज के चलचित्र लोककथाओं पर आधारित होते हुए भी बच्चों की जिज्ञासा को शान्त व कल्पनाशक्ति को विस्तार नहीं दे पा रहे है। बच्चों को सहज, सरल व पारिवारिक वातावरण देकर उसकी जिज्ञासा व कल्पनाशीलता की भावना का विकास करने का प्रयास करना चाहिए। उसमें धैर्य व साहस के गुण विकसित करने का कार्य किया जाना चाहिए। बच्चों को बाल लोक साहित्य के माध्यम से श्रृव्य – दृष्य सामग्री के माध्यम से, खेल के माध्यम से संस्कारित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। बालक के मस्तिष्क के अनुरूप अगाध संग्रह लोक साहित्य में व्याप्त है, अत: आवश्यक हैं कि बाल लोक साहित्य के रूप में संचित धरोहर का उपयोग करें व दिशाहीन होती बाल पीढ़ी को दिशा व संस्कार प्रदान करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पं. निमाड़ की जनजातियों के गीतों का तात्विक अनुशीलन : पृष्ठ 14
2. स्वराज्य सूची : उत्तरप्रदेश की लोककथाएँ भाग – 2, भू. : मई 1979
3. शुचिता सेठ : समकालीन हिन्दी बाल साहित्य : अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
4. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे : बाल साहित्य मेरा चिन्तन : मेघा बुक्स दिल्ली 2000

****